खामोशी के रंग

(कविताएं)

खामोशी के रंग

सरल विशारद

सामयिक प्रकाशन, कलकत्ता

संस्करण : प्रथम, 1987

मूल्य : तीस रुपये मात्र

प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन
क्यू-10, 40/1 टेंगरा रोड़
कलकत्ता-700015

आवरण : मन्नू

मुद्रक : एम० एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-1100032

KHAMOSHI KE RANG (Poem) by Saral Vishard
price : Rs. 30.00

अग्रजों के
दुर्दान्त
स्नेह-सागर
की
शेषांश-स्मृति को

' ७

क्रम

उपलब्धि

मुझे
किसी खास किस्म के आदमी ने
धीरे से कहा—
तुम बहुत बदल गए हो "प्यारेलाल"।

और
मैंने स्वीकृति में
गरदन हिला दी
घर लौटते ही
आंगन में लटके टूटे शीशे ने कहा—
तुम बदले नहीं
बदशक्ल हो गये हो प्यारेलाल !
और मैंने स्वीकृति में
गरदन हिला दी
सिर्फ गरदन हिलाना भर सिखाया गया है मुझे !
अब तक !

लेकिन मैं
गरदन हिलाना नहीं
मुट्ठियां तानना सीख रहा हूं।

अभी अभी ही

अभी-अभी ही शुरू हुआ है
जीवन का पहला वसंत
इसका अभी कहा है
अन्त।

अभी-अभी उतरी है
किरण पालकी
छत पर लेटी हुई ओस की खातिर
अभी-अभी सुलगी है
धुआ उठाकर
दरवाजे के बाएं पड़ी अंगीठी
अभी-अभी आगन के
हाथो से फिसल
सीढियां लाघ
मुझ ऊघे-जागे पर से
फटी रजाई खीच
सूखी चाय की चरचरी वाणी
खा जाने और उवाल
जा घुसी तपेली में
अभी-अभी जा खुनके शब्द दर्द से
वजे ज्यों
कप और तश्तरी
वाहर खड़ी धूप की गेरू गाड़ी
मुझे पुकारे
पीडा की इस खुनन-खनन को
वांध छद मे

साथ ले चलूं
जहां-जहां ले जाए मुझे तकाजे
अभी अभी तो शुरू हुआ है
सूरजमुखी वसंत
इसका अभी कहां रे अन्त !

यात्रा

यही था क्या
हमारी यात्रा का अन्त ?
साथ का भवितव्य
निकटता की नियति
कि
हम बिखर गये
पूरी होती हुई माला के
मोतियों की तरह

टूट गये—
बनती हुई गिलासों की तरह।
एक सूखी हुई नदी को
चीरकर
पानी निकालने की आकांक्षा में
हांफते हुए साथ-साथ चले
थके नहीं
बैठे नहीं
हर मोड़ पर अपनी यात्रा के
चिह्न आंकते
निरन्तर साथ-साथ चलने की साध में
रुके नहीं
"चरैवेति ! चरैवेति ! चरैवेति ! भिक्षुवा"
थी गीत हमारा
और—
सहसा एक शिलाखंड का उगना
हमारे टूटने का कारण बन गया,
एक शिलाखंड की उपस्थिति—

और इतनी लम्बी यात्रा का यह अन्त !
उफ !
समय की इतनी गहरी मार
हालत का पुरजोर आक्रमण
धैर्य की धड़कनों का
सहसा बन्द हो जाना
कि
संबंधों के आधार जमीन छोड़ते से लगे
हम घड़ी बदलते-बदलते से लगे—
क्या यही था
पत्थर फेंकने वाले शैलानियों
के सफर का आखिरी पड़ाव
कि
पत्थर उगाने का इलजाम साबित हुआ
हमारी यात्रा का अन्त !

आने वाली पीढी

हमें अपराधी करार दे
मौत या फिर आत्महत्या का
फैसला सुनाए।
अच्छा हो हम ही तजवीजलें कि
आखिरी सांस तक ढोते रहेंगे
गलत चुनावों से उगी कूबड़
फांसे ही रहेंगे गले में
दिशाहीनता से गूंथा गया फंदा
दागे रहेंगे अपने चेहरों पर
सुविधा से किये गये समझौते
ताने रहेंगे अपने तख्तियां
दोगले ! नकली ! नकाब !
बदरंग—रंग किसमें !
हम ठूहों को देखने या फिर कुरेदने
ठहरे ही नही
गुजर जाए लम्बे दूर के लिए
नई पीढ़ी
अपराधी है हम तजवीजलें
अपने लिए सजा !

धीरे-धीरे…

जी हां सब कुछ
धीरे-धीरे होता है
मुझमें मेरे घर में मेरे देश में
जो भी होता है धीरे-धीरे होता है।

कम पावर वाले बल्ब की तरह
बुझती है
मेरी देह की पेंदी में
भभूकी हुई आग
शिराओं का तनाव
सोच के भीतर का हड़कम्प
होता है फ्रीज धीरे-धीरे।
चुकता है तेल की तरह
होने का अहसास
और व्याप जाता है मेरे भीतर
गूंगा आकाश
मुझसे उलटकर ही सोचती है
मुझसे जुड़ी हर इकाई
समूह समझ रहे मैं को
कर दिया जाता है नितान्त अकेला
मगर धीरे धीरे…।

मैं आदमी नहीं
पुर्जा लगने लगता हूं खुद को
घिस रही हैं चढ़ी चूड़ी
धीरे बहुत धीरे-धीरे।
मुझ जैसों की ही तो

इत्ती बडी जमात है यह दुनिया।
मेरी तरह ही मरता है
हर आदमी
अपने ही समय में धीरे-धीरे…
और हर मौत की बनती है
भरी पूरी जिन्दगी—मगर बहुत धीरे-धीरे
गुजर जाता है मेरे भीतर से एक युग
अजनबी बना रहता हूं मैं
खड़ी हो जाती है दीवारें
एक-दूसरे को अनदेखा रखने
पहन रहते हैं चश्मे
खून और ख्यालों के रिश्ते
और मैं भी हो गया होता हूं पक्षधर
धीरे…धीरे…।

धीरे से आंख बचाकर देखता हूं
तो साधु हो गया होता है, संबंध
एक सम्बोधन जुआरी
तीसरा नेता तो चौथा तस्कर
हत्था घुमाकर चलाती है घर
मेरी विधवा बहन
यूं कि अकेली एक कविता की
थाम उंगली
चल देता है कोई कवि धीरे…धीरे…।

अहम जरूरत तक
करती हैं पांवों की प्रतीक्षा
घुसपैठ करती है
छूत होकर फैलती है भाषा में भाषा
इस तरह
धीरे-धीरे…
आदमी को आदमी

घर घर को
और एक देश दूसरे देश को
बनाता, बिगाड़ता है
ढहाता है, संवारता है
जाला बुनती है मकड़ी
कुतरता है चूहा
मरता है स्वाद
मगर धीरे-धीरे…
जी हां सब कुछ धीरे-धीरे ही होता है
मुझ में
मेरे घर में
मेरे देश में।

ओ री सुनयने !

ओ री सुनयने
देख मत सपने
सपने—होते नहीं अपने
होते नहीं सच्चे
सुबह-सुबह आता है माली
तोड़ लिया करता
लदकद पेड़ों से
फल पके और अध कच्चे
सपने—हाथ नहीं आएंगे तेरे
फिर तू रोयेगी
खुद को ही कोसेगी
तब सब मिलकर हा-हा हंसेंगे तुझ पर
देख मत सपने, ओरी सुनयने !

लोग—कान से देखें, सुनें आंख से
देख, चले है उल्टे बास बरेली
प्यार—चार मीनार है
रिश्तों में पका है घुन, मत टांग कहीं तस्वीरें
तू सिर मत धुन
कानों से ही सुन
सपने होते नहीं अपने
मत देख सपने
ओ री सुनयने !

देवता अकाल में

ऊपर कोरा आकाश
नीचे दरकती धरती
औंधी पड़ी पेट की मटकी
कहते हैं—अकाल पड़ी है
रोम-रोम दरद गाया
अकाल पडा है;
सालों बाद
कर्मधनियों को मिला
स्वांग का अवसर
चलो
देवता बनो
इतिहास बनो
ऐसा काल
नहीं आने का।

क्या होगा ?

क्या होगा कविता सुनने से
तालियां बजाने से
झंडा फहराने से
वंदे मातरम् गाने से क्या होगा ?
गाल फुलाए
ढोल बजाए
नियति के दास
मद नीयत से
जीभ की भूख खुराक बढ़ाई
यही किया करते आए हैं—तीन दशक से
नेहरू को गांधी से मोटा ।
ये वे बटके
वे ये लम्बे
और लोहिया महज एक अदना व्यवहार
खादी के गांधी के पीछे
फतह शहीदों की
बोल, बोल रहे है तीन दशक से
क्या-क्या नही करते
हठयोगी है हम
मस्तूल से बिंधकर
दिखाते है खाली पेट, दमाग बेचते है
हर पांचवें बरस
कत्था जमाते है भविष्य की जड़ों में
क्या हुआ ! क्या होगा !
मेरे चिल्लाने से तुम्हारे चुप हो जाने से

दिवस और जयंतियां
बरस और सदियां
मना-सजा लेने से क्या होगा मेरे दोस्तो !
यही तो होगा कि
तिरंगे को देखती
भूखी ही सो जाएगी मेरी बिटिया
हक-हकूक की खातिर
खेत रह जायेगा तुम्हारा छोटा भाई
आटा पीसेगा जेल में
सिर्फ शपथ खाई जायेगी न्यायालय में
बस्ता बन्द रहेंगे विधान आईन
अन्तर्ध्यान हो जाएगी फाइलें
रातों रात खुल जाएंगी
सिमसिम बहिया
हर हुक्काम फूसिया तेली
हो जाएगा अल्लादीन
खड़ी हो जाएगी सोहरत की कोठी
पेटी से पैदा किया गया मोहरा
वजीर कहेगा खुद को
चाल तो चाल नजर भी हो जाएगी तोत !
फिर क्या होगा मेरे दोस्तो !
समाधियों पर फूल चढ़ने से
आंसुओं का नमक बनाने से
क्या होगा
सलामियां लेने से और देने से।
बर्फ बिछाई गई सड़कों पर
बोलना तक भूल गए है लोग
अब सिर्फ देखते है और चलते हैं,
निरा गैर जरूरी बना दिया गया है—
सोचना
अपराध होगा, [illegible]
कही पर भी आग [illegible]

[illegible]

सोच में जमींदोज हो जाना
क्या होगा मेरे दोस्तो
झांकियां दिखाने से
इतिहास दुहराने से
संसद से सड़क तक
भाषण का भूत जगाने से।
क्या होगा
मेरी कविता सुनने से
तालियां बजाने से
वन्दे मातरम् गाने से।

एक दस्तावेज सरल के नाम

वर्जनाओं में मुक्ति
मान लेने को विवश किये गए
सरल में
अब भी शेष है
जीवेषणा के अणु-परमाणु
और मृत्यु की असरल उपेक्षा
जिन्दगी मापने
खुद ने ही बना लिए
दूरियों का दु.ख
निकटता की पीड़ा के रास्ते
बारहा तलाश की डुबकियों में मिला
सराबोर बेगानापन ही
धरोहर रहा है उसकी
अकर्म के लिए दोषी
और विस्तार के लिए निरा अयोग्य
करार दिये जाने के प्रमाण
तलुओं में खुम कर टूटे हैं
कांटे निकालने भर का जतन भी
बेहद लचीला साबित कर गया है उसे
यहा वहां समझौते
इन उनकी मनौवल में
कही गहरे दब गई उसकी
अपनी निजता
भीतर
और बाहर के अपनेपन की तलाश में
बेतहाशा दौड़ता सरल
कवि हो गया है।

फिर मैं ही क्यों ?

पिता ! देखते कुछ भी नहीं
सिर्फ संग्रह करते हैं
मां ! सोचती नहीं, सोती है
भाई ! नंदी बने
अभय विचरण करते हैं
प्रौढ़ाओं के आस-पास
रात-रात भर घर-बाहर
सिनेमा और प्रेम से ही फुर्सत नहीं बहनों को
और मित्र शब्द कोश में
एक-एक कर गायब हो गई
प्रेमिकाएं
या फिर किन्हीं दड़बों में
नाबालिग चुम्बनों में
कुठाएं उजालती है
शरीर तोड़ने और तुड़वाने के तुरन्त बाद
तेल नमक लकड़ी है पत्नी।
नेता यानी कि देश के बड़े लोग
फेरु की मेरायन में हैं
हो जाने फिसलनी
स्वार्थों-चिन्ताओं का तुमार
आकाश टूटने धरती दरकने युग में
फिर मैं ही क्यों बिधूं ! भटकूं !

हथेलियां जिन्दगी की

जब-जब भी
आत्महत्या और जीवित मृत्यु के
नीले पृष्ठ
खुलते हैं मेरे सामने
जिन्दगी ने
हथेलियों के सख्त कपाड
जड़ दिए हैं मेरी आखों पर
और
मुझे बहुत भीतर उतरकर
बांचनी पड़ी है एक पोथी
जिसका अर्थ हुआ है
हिलकती हुई फसल
बोलता हुआ भोंपू
राशन और करामन के लिए
घरघराते
आदमकद मशीन के पुर्जों में से
बाहर आया हूं जब
हथेलियों के कपाट खुल गए हैं
तमाम नीले पृष्ठों पर
सुर्ख हर्फ बिखरे होते हैं।

प्यार और घृणा के बीच

प्यार : सभ्य आदमी
व्यवहार में औपचारिक
और अवसर पर अहसानपरस्त
घृणा : बाजारों फिरती
एक सस्ती चीज
इन दोनों को ढोते हुए भी
जी जाने का फैसला
जिन्होंने भी लिया है, शायद मैंने भी
उन्हे खुभेगा
जो औपचारिक/अहसानपरस्त
और बाजारू चीज को
झाड़कर देखने की
जरूरत नही मानते।
मगर
जिन्हे अरग आत्मीयता की
तलाश हो।
वे कहां ठहरें—किस रास्ते चलें
मेरी शताब्दी में बीच का रास्ता ही
राजमार्ग है
सावधान, असावधानी का नाम मृत्यु
पढते हुए कितनी दूर जा पाएंगे
मैं और मुझ जैसे लोग।

जाने कौन ?

जाने कौन
जमा गया बर्फ हमारी नसों में
किस धातु के बने थे हाथ
ढांप गए
ज्वालामुखियों के मुहाने
उठा गये
संबंधों के ठीक बीच से
दीवारें
आंगन में कंटियल झाड़ियां
एक तोड़ा सांकल से
बांध गये विवेक
कौन थे वे अपनी पहचान तक ले गए
हम हैं कि
घर-वाली बीवी-बच्चों का कोल्हू
फिराए ही जा रहे हैं।
आकाश छू लेने की कोशिशों में
नीचे से ऊपर
कुछ और ऊपर तक घिस गए
फिर भी नहीं जानते
कहां है, कौन है इस नाटक का सूत्रधार
कहीं हम, हमारा संशय ही तो नहीं
अकवि कालिदास हम स्वयं तो नहीं
कि अपनी शाख काटे जा रहे हैं
इधर से उधर पूछते हैं
सवाल पर सवाल।

लोक-पुरुष

दूसरों मे
स्वयं की दुर्बलताए सोचना
और
अहम् के मंच
आरोपित करना
श्रद्धा, स्नेह और विश्वास को
लघु
हीन
कुंठित समझने का गर्व
इतिहास पुरुष तो बना सकता है
मगर
लोक-पुरुष नही ।

एक शहीद की आकांक्षा

मेरी जेब में चन्द ताजा गुलाबों की
मुस्कराहटें हैं

जिन्हें मेरी कमसिन बीवी ने
मोर्चे पर जाते समय
मेरी दायीं ओर की भीतर की
जेब में रख दिया था,
और मैं मुस्करा दिया था अपनी जमीन
देखकर !

कितना ख्याल है गुलाबों का
गुलाबों में महकते ख्वाबों का।

मैं लड़ता रहा और निरन्तर लड़ता रहा
मादरे वतन के लिए
और
महसूसता रहा हर घड़ी कि मेरी दायी ओर की
जेब में चन्द ताजा गुलाबों की मुस्कराहटें हैं
जिन्हें मोर्चे पर जाते समय मेरी कमसिन बीवी
ने मुझे सौंप दिया था
और
जिनकी रक्षा वतन की रक्षा से कम महत्त्वपूर्ण
नहीं थी मेरे लिए।

ओ मेरे मुल्क के हुक्मरानों !
विजय के उन्माद में इतने गाफिल मत हो जाना
कि गुलाबों की मुस्कराहट और इनसे जुड़े
मेरी अणिमाओं के स्वप्न काफूर न हो जाएं।

मेरे चमन से मेरा वसन्त मुवकियां भरता
चला जाये और
तुम जागो ही नहीं
और यदि ऐसा हुआ
तो मैं समझूंगा कि
मैं अभी मरा नहीं
मेरे दायें कंधे पर अब भी भरी बन्दूक है
जिसकी दिशा कभी भी बदल सकती है।
मोर्चे पर जाते समय
मेरी कमसिन बीबी द्वारा सौंपी गई
ताजा गुलाबों की मुस्कराहटें मुझसे कुछ भी
करवा सकती हैं।

नरम-नरम हथेलियां

मैं
तुम्हारी नरम-नरम हथेलियों पर
गर्म-गर्म ताजा अंडे रख दूं
और तुम्हें कुछ भी न हो तो
मैं क्या करूं?
अपने भीतर उठते सवालों को
क्या जवाब दूं ?

आकाश छूती आकांक्षाओं को कौन-सी जमीन दूं ?
बोलो-बोलो मेरे हमसफर
मुझे
तुम्हारा यों खामोश रहना मुझे बहुत अखरता है
दुखता है
यों अहसास नही मरता है आदमी का

आदमी—या तो हिमालय होता है
या ज्वालामुखी।
बुत या बुतपरस्ती उसे पसन्द नही।

मैं
तुम्हारे पतले नरम होठों पर
सुलगते हुए सवाल पर सवाल रख दूं
और तुम निरुत्तर रहो
तो मैं क्या करूं?
अपने भीतर फूटते
ज्वालामुखी को कौन-सी दिशा दूं ?

यह क्या हो गया है

यह क्या हो गया है ?
यह क्या हो गया है ?

पेट की थोय वढ़ती चली जा रही है
सत्य की मां ईमान की वेटियां
विना दूध पानी मरी जा रही है
कुर्सियां कुर्सियों से भिड़ी जा रही हैं

दम तोड़ता खेत में बैल
चिमनियां मिलों की बुझी जा रही हैं
किसी की भी कोई सुनता नहीं
यह क्या हो गया है ?

भीड़ ही भीड़ सड़कों, गलियों, पार्कों में
बढ़ी जा रही है
जवानी मेरे देश की झण्डे उठाती, नारे लगाती
गोलियां खाती मशालें जलाती
मरी जा रही है
दण्ड आज वेदण्ड हुआ जा रहा है
न्याय फाइलों में घुटा जा रहा है
अंधेरे की उमर बढ़ी जा रही है
रोशनी को कोई देखता नही
यह क्या हो गया है ?

सबको अपनी फिकर
देश की चिन्ता किसी को नहीं
सूख जाए गंगा, बाढ आए गोमती में

उगे ही नहीं कहीं कुछ
या
खेत के खेत सूख जायें
है किसको फिकर
कोठियां झुकती रहें बोतलें ढलती रहें
विदेशों में खाते खुलते रहें
कुर्सियां डगमगाती रहें
सबको इतनी फिकर
आदमी की चिन्ता किसी को नहीं।
यह क्या हो गया है ?

मुश्किलों से हुए आजाद मुलक का
पानी कहां खो गया है ?
यह क्या हो गया है ?

वचाया नही जा सकता

[गुजरात के छात्रो को याद करते हुए देश के सभी लडाकू छात्रो की ओर से लिखी गई कविता]

···वचाया नही जा सकता।
अव तुम्हे वचाया नही जा सकता
कितने ही नकाव लगाओ
तुम्हारा असली चेहरा हमारे सामने है
अव तुम्हे क्षमा नही किया जा सकता।

सविधान की आड मे
कव तक वचाओगे इस संसद को
कव तक शिलान्यास व मावधानियों से
गुमराह करोगे भूख को

अव तो
फेंकना ही होगा एक और वम्व भगतसिंह को
स्वय को तोड़नी होगी ससद की सारी मर्यादा
फासी पर झूलने के लिए आग भडकाने के लिए

आजाद को आराम कहा
भरी हुई पिस्तौल लिये
ढूढ रहा है पेट के दुश्मनों को
आवाम के हत्यारो को
आग तो भड़क ही गई है
अव तुम्हें वचाया नही जा सकता

सारे दरवाजे वन्द है

और
गोलिया उल्टी चलने लग गई है
तुम कब तक मतपेटियों को
झुनझुना समझते रहोगे।
अब न मत है न पेटिया
बस तुम हो
और हम है
आमने-सामने
तुमको अब कोई नही बचा सकता

तुम्हारा ही खून तुम्हारे लिए
सुरंगें बिछा रहा है
तुम्हारी ही कलम तुम्हारे विरुद्ध
फैसले घसीट रही है

अब भी समय है
सावधान संभल जाओ
क्रांति का समय निश्चित होता है

अच्छा हुआ
तुमने पेट को भडका दिया
सहनशील आंतें फुंकार उठी
अब तुम्हारे सारे सब्ज-बाग काफूर हो जाएंगे
और
हवामहल धराशायी
अब तुम या तो पागल हो जाओगे
या आत्महत्या करोगे
अब तुम्हे किसी भी बहाने
बचाया नही जा सकता
तुमने हमारी भूख की हसी उड़ाई है
याने हमारी इज्जत पर डाका डाला है
भूख हमारी मां है, बेटी है, बहन है, बीवी है

तुमने इनको सरेआम बेइज्जत किया है
अब तुम्हे क्षमा नहीं किया जा सकता
दिल्ली या मणिपुर कुलुधारी या उदयपुर की झील
कहीं भी पनाह नहीं मिल सकती

मृत्यु के अतिरिक्त और कोई विकल्प
नहीं है तुम्हारे पास
इज्जत के लुटेरों को
जीने की इजाजत नही दी जा सकती
अब तुम्हे नही बचाया जा सकता।

26-2-1974

लूट बेटे लूट

लूट बेटे लूट
जितना लूट सके तू लूट
आज का दिन तुम्हारा है
कल की सुबह नहीं है

आंगन बीच अकेली बैठी
बुढ़िया सबको हांक रही है
मुख्य द्वार है बन्द

द्वारपाल गायब
सरजनहार भवन के
तहखानों में बन्द

मत चिल्लाओ
तुम हो निश्चिंत
बुढ़िया करे संकेत
तुमको पूरी छूट
सब हाथों से लूट
लूट बेटे लूट
जितना लूट सके तू लूट ।

खामोशी के रंग

जब तुम्हारा ही विश्वास नहीं रहा
तब
मेरे जीने का कोई संसार नहीं रहा
यह सही है कि
भीड़ मे खड़ा मैं
कभी तुम्हारे लिए एक टापू
बन गया था
यात्रा का ठहराव
नयी सम्भावनाओं का सूचक
वही आज तुम्हें निर्जन प्रदेश लग रहा है
अथक श्रम की
यह निरर्थक उपलब्धि
फिर क्यों रहे वह (यानी मैं) अस्तित्व में

अब मेरी भीड़
मेरा कोलाहल भी तो नहीं मेरे पास
परिचय की चकारी में
अपरिचय का एक बिन्दु
रेखाओं के रंध्र-रंध्र से परिचित
खामोश
सब कुछ कहता हुआ भी
निर्वाक-निस्पन्दन

हाय री खामोशी
क्या-क्या रंग-ढंग दिखाये तूने
पड़ाव दर पड़ाव
इस यात्रा के दौरान

जब मेरा सहयात्री होना भी
तुम्हें बेमानी लगने लगा है
मुझे मेरी किसी भी यात्रा का
न अथ मालूम न इति
बस समाप्ति, समाप्ति, समाप्ति

अब मुझे तुम्हारा घर, आंगन
देहरी नगर
भाषा तक छोड़ देनी चाहिए
अब नही मुझमे
तुम्हारी आस्था
तुम्हारा विश्वास
फिर क्यो रहूं
मैं तुम्हारे आस-पास
अब मुझे तुम्हारा
अहसास तक नही करना चाहिए

आस्थाहीन इकाई में
और प्रतिमा में
कोई अन्तर नही होता।

मुट्ठियां ताने पूरी की पूरी सड़क खड़ी है,
और,
हर आंख तुम्हारा असली चेहरा
भांप रही है।
तुम कितने ही चेहरे लगाओ
असली चेहरा नहीं छिप सकता
छोटा-सा पटाका
एटम बम नही बन सकता
और बीबी को जोर से डांटने पर
क्रांति की शुरुआत नही हो सकती
और हर बार
तुम इसी प्रकार की नौटंकियां दिखाकर
मत पेटियां भरा लेते हो
अब ऐसा नही करने दिया जाएगा

अब न मत मिलेगा, न पेटियां
अब वैसा भी कोई नही रहा
जैसा तुम समझते रहे हो लोगों को
सबकी आंखें खुली हैं
भुजाएं तनी है भवें चढ़ी है

सुर्ख सूरज की पहली किरण के साथ
युद्ध की घोषणा करते हैं
लड़ो या मरो
लड़ाई नतीजा हासिल करने के लिए ही की जाती है
सुलह या समझौतों के लिए नहीं

अब तुम्हारे शरीर में बारूद नहीं रहा
और तुम आग लगाने के लिए
आग बबूले हो रहे हो
तुम्हारा यह नाटक
अब नहीं चल सकता।

युद्ध की घोषणा

वर्जनाओं की लम्बी बाड़,
चौपाल की चारों ओर खींचकर
अपने लिए सुविधाओं की,
सूनी सड़क चुनने का,
जन विरोधी अधिकार,
तुम्हें अब नहीं दिया जा सकता।

बहुत हो चुका,
अब तुम्हे संघर्ष के नाम पर,
सुविधाएं बटोरने की,
इजाजत नहीं दी जा सकती।

लड़ाई में लड़ने वाला,
सिर्फ लड़ता है या मरता है,
किसी का बगलगीर होकर नहीं लौटता।

दोस्त अन्त तक दोस्त होता है,
दुश्मन अन्त तक दुश्मन होता है,
तुम लड़ नहीं सकते,
इसलिए हर टुच्चे सवाल का,
जवाब संसद से मांगते हो।

मांगने से कुछ नहीं मिलता प्यारे लाल,
और संसद में अब किसी भी
समस्या का समाधान नहीं होता,
समस्या होती है ?

मुट्ठियां ताने पूरी की पूरी सड़क खड़ी है,
और,
हर आंख तुम्हारा असली चेहरा
भांप रही है।
तुम कितने ही चेहरे लगाओ
असली चेहरा नही छिप सकता
छोटा-सा पटाका
एटम बम नहीं बन सकता
और बीवी को जोर से डांटने पर
क्रांति की शुरुआत नहीं हो सकती
और हर बार
तुम इसी प्रकार की नौटंकियां दिखाकर
मत पेटियां भरा लेते हो
अब ऐसा नही करने दिया जाएगा

अब न मत मिलेगा, न पेटियां
अब वैसा भी कोई नही रहा
जैसा तुम समझते रहे हो लोगों को
सबकी आंखें खुली हैं
भुजाएं तनी हैं भवें चढ़ी है

सुर्ख सूरज की पहली किरण के साथ
युद्ध की घोषणा करते है
लड़ो या मरो
लड़ाई नतीजा हासिल करने के लिए ही की जाती है
सुलह या समझौतों के लिए नही

अब तुम्हारे शरीर में बारूद नहीं रहा
और तुम आग लगाने के लिए
आग बबूले हो रहे हो
तुम्हारा यह नाटक
अब नहीं चल सकता।

नदी को वहना है

ढहने दो
जितनी भी ढहती हैं
दीवारें
मीनारें
नये सृजन के लिए
नदी को वहना है।

व्यर्थ मोह
आंगन के विरवों से
झरते-गिरते पत्तों से
सड़ी हुई सेवों से
मरी हुई मरियम से
मरने दो
जितने भी मरते हैं
नासूरी रिश्ते
नये सृजन के लिए
नदी को वहना है।

व्यर्थ अपेक्षा
झुके हुए वृक्षों से
काले ढलते सूरज से
दागी वीमार गुलावों से
नासमझी में उठे सवालों से

सवको जाने दो
अपनी अपनी दिशा
समय खड़ा पहचानो
मत जाने दो।

नई भोर के लिए
नये छंद से
नये गीत रचना है

ढहने दो
जितनी भी ढहती हैं
दीवारें मीनारें
नये सृजन के लिए
नदी को बहना है।

चुप

शी-ऽ ऽ ऽ
चुप
कुछ मत बोलिए
आंखों पर पट्टी
कान खुले रखिए
आकाशवाणी सुनिये—
मुल्क में तरक्की हो रही है
अब कोई भूख से नहीं मरेगा
अकाल हर साल पड़ेगा
चीजों के दाम नहीं बढ़ेंगे
आटा और अनार एक भाव पड़ेंगे

क्या हुआ
आपका भाई
महबूब का घोड़ा
पड़ौसी का बेटा
एक दिन खाली पेट रह जायेगा

सी-ऽ ऽ ऽ
चुप
कुछ मत बोलिये
अपना खयाल कीजिए
माथा मत चलाइये
मुट्ठियां मत तानिये
तालियां बजायें—जरा मुस्करायें

जन-गण मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता
सावधान
खड़े हो जायें
क्रांति-क्रांति-क्रांति
मत सुनिये इसे
बदहजमी हो जायेगी
अंगुली पकड़िये चले आयें
हमारे साथ देश है, फौज है, अफसर है,
सरकार है ।
मत घबरायें
क्या पड़ा है क्रांति में
भ्रांति में रहिये
आराम है
चुप
कुछ मत बोलिये
आकाशवाणी सुनिये
रजाई तान सोयें
मुल्क में तरक्की हो रही है
आकाशवाणी सुनिये ।

कविता और कवि

नाहक ही में,
तुमने सिर चढ़ा रखा है कविता को
और कवि को पैगम्बर
कविता से कुछ भी नहीं होता है मेरे दोस्त !

कविता न रोटी दिला सकती है न लकड़ी
न कपड़ा न मकान
कविता सिर्फ लड़ना सिखाती है लड़ना
हुक्काम के साथ
जुड़ना सिखाती जुड़ना सिर्फ
आवाम के साथ
तुम कविता से और क्या चाहते हो मेरे यार !

कविता थके हुए को हिम्मत
और हारे हुए को
जीत का अहसास दे सकती है
मां की तरह दुलार
और
पिता की तरह
हौसला बुलन्द कर सकती है

कविता प्यार के नग्मे ही नहीं
भूख के ज्वालामुखी का
विस्फोट भी बता सकती है

अंकुरित होते बीज का
भविष्य और
शूलों की शैतानी का इजहार भी कर सकती है

यह काम तुम्हारा है मेरे दोस्त
तुम्हारा कि—
कविता के हथियार से तुम
दुनिया बदलने की तरकीब सीखो
फिर
चाहे बन्दूक उठाओ
चाहे कबूतर उड़ाओ
कविता को इससे कोई सरोकार नही
कविता से और कुछ भी नही होता है
तुमने नाहक ही सिर चढ़ा रखा कविता को
और कवि को पैगम्बर

कविता तो इन्सानी जरूरत है
भूख और भाषा की तरह
हमारे साथ-साथ है
कविता तो एक संस्कार है जो—
भूख और भाषा की तरह हमारे साथ-साथ है
कवि पहले एक इन्सान है सिर्फ एक इन्सान
फिर फनकार
उसे व्यर्थ में सिर मत चढाओ
कवि को आदमी
और
कविता को आदमी की भूख से
ज्यादा कुछ मत समझो।

ताजा गुलाव

ताजा
और ताजा जिन्दगी की तलाश में
निकल पड़ता हूं
रोज व रोज
सूरज की तरह
अपनी नन्हीं किरणों को चूमकर।

मेरी ही तरह
हर घर से निकल पडता है
एक-एक सुर्ख सूरज

ताजा
और ताजा जिन्दगी की तलाश में
हर रोज।

बीते हुए दशकों ने
एक भी गुलाव को
नही दिया खिलने
एक भी शवनम को
नही दिया हंसने
लेकिन
मैं और मेरे जैसे और
सुर्ख सूरज की तरह
आज भी निकलते है
ताजा और ताजा गुलाव की
तलाश में
रोज-रोज।

ज्वार

सुलगती है
एक चिनगारी
बहुत गहरे
बहुत गहरे
मुक्ति के सुख में
भ्रमित इस देश के मन में;
जो
तूफान के पहले की खामोशी में
सांसें ले रहा है।
दौड़ता है सिंधु-सा आक्रोश
जिसकी धमनियों में
जो
तट की परिधियों को लांघने
अब धैर्य छोड़े जा रहा है।

ओ किनारो,
ओ कंगूरों,
और उनसे
लगे लिपटे
परावलम्बी प्रदेशों
रुक नहीं सकता
बंध नहीं सकता
समय पर शीघ्र ही
अब ज्वार आयेगा।

एक लड़ाकू बेटे की ओर से...

पौ फटते ही
चाय की गरम गरम
प्याले के साथ
मेरे बेटे ने मुझसे चंचडते हुए कहा—
"जागरण के समय सोना मना है
लड़ाई अभी खत्म नही हुई
जारी है पिता !

पस्तहिम्मती
युद्ध नियमों के विपरीत है
और तुम
कभी भी विपरीतगामी नही हुए हो।"

सुनो
मैं फटी हुई बनियान और
थेगडे लगे थूथना पहने
नंगे पाव
हर मोर्चे पर तुम्हारे साथ हूं
तुम्हारी लड़ाई मेरी लड़ाई है
और मेरी लडाई तुम्हारा स्वप्न
देखो मेरी बंधी हुई मुट्ठिया
और फैली हुई हथेलियों को देखो
कितनी सख्त है—नारियल की तरह
और
मेरी कविता
इतनी लड़ाकू और वाचाल हो गई है
कि पैने-पैने हथियारों से
ढूंढ़-ढूंढ़कर वीध रही है—दुश्मनों-हत्यारों को।

और तुम
अभी भी सो रहे हो
उठो देखो
और मेरी खुली हुई आंखों में
सपनों की फसलें लहलहा उठी है
और तुम
इस बदबूदार तंग गली को
अब छोड़ चलो
जिसका सीधा जुड़ाव
संसद से निकलती
शोषण की खूबसूरत सड़कों तक है
जहा तुम
एक पत्ते में पेड़ की ललक लिये
फड़फड़ाते रहे थे
और सड़क अट्टहास करती रही ।
पिता ! उठो
मेरी मां और अपनी मां के मोह को
यही छोड़ दो
अंधी गली घाटियों में
सिर फोड़ती-फोड़ती जब थक जायेगी
चली आयेगी
तुम्हारी छोटी लड़ाकू कहानी के साथ
वहां
जहां मैं और ये कविता—
खुले मैदान में
अपना घर बना रहे होंगे
और तुम इतिहास रहे होगे ।
और मैं
गर्म लोहे पर
हथौड़ा मारना शुरू कर देता हूं
ठन…ठन… ठन
ठन…ठन…ठन
एक और हमशक्ल के लिए

घड़ी का पैंडूलम

मेरी घड़ी का पैन्डूलम
रुक गया है
टूटा नही ।

समय सूचक सुईयां
नि:सहाय निरुपाय
मैं क्या करूं ?
मेरे नगर में
कोई घड़ी साज नही
और
न ही चलती हुई
घड़ियां घरों में हैं
मेरा
समय बोध
ठहर गया है
मरा नहीं
ओ मेरी अनारम्भित और– ठहरी हुई
यात्राओं !
मुझे गलत मत समझो
मैं रुके हुए रास्ते खोल रहा हूं
पैन्डूलम ठीक कर रहा हूं

मेरी घडी का पैन्डूलम
रुक गया है
टूटा नही ।

मौन का अर्थ

मेरे मौन को
गलत अर्थ मत दो,
मैं
अपनी ही कमजोरियों से
लड़ रहा हूं
अपनी ही
हीनता को मार रहा हूं
इलाज और हत्या के
समय—
—खामोशी अनिवार्य है—
इसलिए
मेरी खामोशी को
इसका अर्थ मत दो।

गलीचे

आओ
हम सब गलीचे बिछायें
और
गायब हो जायें

अभी-अभी
एक पुरानी पुस्तक
के संशोधित संस्करण का
विमोचन होगा,
आम आदमी पर
खास आदमी
खास-खास मुद्दों पर
मगज मारेगा
भीड़ का एक टुकड़ा
उसके साथ होगा
सुरक्षा के सुख में
हंसेगा गरदन हिलायेगा
खास आदमी फूल जायेगा।
थोड़े से समय की
इतनी सारी उपलब्धियां
वाह—वाह—वाह।
खिड़कियां बजेंगी
खास आदमी खास ढंग से
गलीचे में बिछ जायेगा।
आओ हम सब गलीचे उठायें
और कायम रहें।

नागफनी

बड़े जोर से
आंधी आई
झरा गुलाब, चम्पा करेल
बेला बरगद भाई
पर नागफनी तो उग आई।
सब हैरान
सब परेशान
न कही धूप
न कहीं पानी
शोर मच गया
यह किसने कर दी नादानी
कैसे उग आई फिर नागफनी ?
यह
हरकत मौसम की
इसको समझो भाई
जिसको झरना है झरे
जिनको उगना है उग आये।
बोले कोई या चुप हो जाये।
भाषा तो हथियार
हौसले वालों को शोभा देता है
का-पुरुषों के लिए
कभी भी
शब्द नही रोता है।
काफी है
सघन अंधेरे में
हीरे की एक कनी
उग आई नागफनी।

अकेली मोमबत्तियां

फिर
लील लिया अंधेरे ने
क्या हुआ
मेरे हाथ की मोमबत्तियों को
अकेले लड़ी थी
गुहा के
अंधेरे से।
असंगठित संग्राम
पराजय की पहली मंजिल है।

जलो
मेरे हाथ की मोमबत्तियां
मगर साथ-साथ
बुझो
मगर अलग-अलग।

ठंडी लाश

एक ठंडी
होती हुई लाश को
उन्होंने
ज्वालामुखी बना दिया
और खुद ठंडे हो गये।
अब
लावे की लपेट में
आते जा रहे है सभी
मौसम बदलने का
समय अभी नहीं है
और
सागर किसी को भी
माफ नहीं करता !

तुम भी तो सागर ही हो

नदी
फिर तोड़ने लगी
तट कंगूरे तरुवर
विश्रामती नावें
यात्री, जलयान,
संभलो
मैदानी-मनुष्य
संभलो।
सागर ने
सरकाया था जिसे
मर्यादित प्रवाह में
विस्तृत मैदानों के लिए
अपने ही
जायों की क्लीविता धोने,
उफनने लग गई
बिना किसी ज्वार के
नदी
किनारे के कानून
धार का संयम
भंग करने लगी
अहमी नदी।
सागर की तनी भौंहें
अनुशासनहीन
नदी को
घूर रही हैं
संभलो मैदानी मानव
संभलो
तुम भी तो सागर ही हो।

ज्वालामुखी असमय

अभी मत फट
मत खोल मुह
नहीं है अभी वक्त
फूटने का
फटने का
बर्फ के
पहाड़ पिघल रहे है
सांय-सांय
करती है हवा
फड़फड़ाते है
गिद्धों के पंख
और तप, सुलग
धधक
ओ मेरे ज्वालामुखी।
जन-जन के अग्निमुख
अभी मत खुल
मत आ हरकत में
अभी मत हिल-डुल
असमय का विस्फोट
आत्मघाती होता है—
लम्बी कूच के लिए—
सोचकर
सुसताते हुए राही की बाधा है
ओ मेरे ज्वालामुखी
ओ मेरे अग्निमुखी
अभी मत फट
अभी मत खुल—थोड़ा और रुक।

आग का रंग

आग का रंग
चाहे वो जहां भी हो
एक-सा ही होता है ।
फिर
चाहे वियतनाम की झोंपड़ियों में
भभकती रही हो
या निकारागुआ के फकीरों में
या मोजाम्बिक के मठ-मंदिरों में
बतियाती हो
चाहे
उडीसा-बिहार की आंतड़ियों में
सुलगती हो
चूल्हे में दबी सिसकती हो
अथवा
भागलपुर के अंधे भारतीयों की
आंखो में सुबकती हो
पंजाब-गुजरात में लपलपाती हो
या बंदूक में कसमसाती हो
तुम्हारी देह या मेरी देह में
दौड़ती हो दहकती हो
कहीं भी हो—सर्वत्र उसका रंग एक-सा होता है ।
अंतर
केवल तपिस की यात्रा का है
या ईंधन की खपत का है
तुम भी एक आग हो
और आग का रंग
चाहे वो जहां भी हो एक-सा होता है ।

खिड़कियां खुली रखो

बार-बार उसे समझाया है
खिड़कियां खुली रखा करो भाई;
ताजा हवा धूप को पसरने दो
सीलन-भरी कोठड़ी को
पक्षियों के कलरव से भर जाने दो—
जिसमें तुम
अंगरखा पहने
पितामह की तरह
      गीता पर केसर के
      छींटे उड़ेलते
हाथ बांधे छत ताकते हो;
उसने रोशनी के सारे रास्ते बन्द कर दिये।
मैंने उसे
एक किताब दी
उसने उस पर चंदन छिड़क दिया
मैंने उसे
एक चिराग दिया
काले शीशे के पिंजरे में
उसे कैद कर दिया;
रोशनी से उसे सख्त नफरत है आजकल।
"सर्दी से बचने का साधन आग
और
अंधेरे से लड़ने का हथियार
      रोशनी है।"
मैं उसे रोज समझाता हूं
वह शून्य में ताकता रहता है।

आप भी उसे समझाइये—
इस कैद से बाहर तो
आना ही होगा
व्यर्थ ही भयभीत है मेरा यार
बाहर उसी का लड़का
और मेरी लड़की
छेनी से दीवार तोड़ने में तल्लीन है
जाने क्यों मेरा भाई गमगीन है
बार-बार उसे समझाता हूं
खिड़कियां खुली रखा करो।

आंसू

कभी भी
मेरी आंख में आंसू
          नही उतरा

आज
भीग ही गई निगोडी।
आईने का
          पानी उतर गया;

कौन समझेगा अब
          उसका आर्तनाद—
जो
युगों से पलकों की कोरों मे
दबा कसमसा रहा था।

तुम्हारा समय

स्याह अंधेरा तो खत्म होगा ही
सूरज की प्रतीक्षा में
जागता जो मैं हूं—इतिहास भोगता।
द्यूत-क्रीडा में पराजित निर्वीर्य
पांडवों की साक्षी में।

आज भी कोई दुर्योधन
निर्वस्त्र करवा रहा है
पांचाली को भरी चौपाल में
अंधायुग वर्त्तमान की चौखट पर
खड़ा है।
नही पांचाली नही
आर्तनाद मत करो
प्रतिरोध करो प्रतिरोध,
अस्मिता स्वयं से रक्षित होती है
किसी धनुर्धर या भीष्म के
भरोसे नहीं
विदुर का चीखना भी निरर्थक
ही होता है।
आकाशवाणी, दूरदर्शन निरीह हैं
मत पुकारो किसी कृष्ण को
पांचाली ! प्रतिरोध करो प्रतिरोध
कृष्ण का आना
ऐतिहासिक आवश्यकता है;
अस्तित्व की चिंता
खड़ा करेगी ही उसे तुम्हारे पीछे।

तुम्हीं ही से तो वो सुदर्शनधारी,
नही तो मात्र मुरलीमनोहर ही है।

सुनो पांचाली !
निर्बल तुम कल भी नहीं थीं
आज भी अबला नहीं हो
निरन्तर प्रतिरोध जारी रखो
अंत तो होगा ही
आजादी से अराजक होते
दु:शासन का।
सूरज की प्रतीक्षा में
जागता जो मैं हूं
तुम्हारा समय।

मशीन और मैं

खट-खटा-खट
खट-खटा-खट
चलती है मशीन
चलता हूं मैं
मैं ही तो चलता हू
भीतर से वाहर, वाहर से भीतर
खट-खटा-खट ।

दाव और दाव
मत दे दाव ज्यादा .
टूटी हुई टाईप पर
फट जाता है कागज
हिल-हिल जाती मशीन
छप ही नही पाता हूं—मैं
टूटी हुई टाईप
पहचान खत्म कर देती
अर्थ तक वदल जाता है
इतिहास और संदर्भ
गलत हो जाते है
तुम्हारा कुछ नही बिगड़ता
साख मेरी चली जाती है
हो जाता है लाचार;
दाल रोटी को
ओ रे भाई राजा
स्याही में स्याही मत मिला
रंग तो एक ही अच्छा है

खूब घुटने दे स्याही
फिर चला चक्का
रोलर से लिप जाने दे स्याही को
घुटी हुई स्याही में
गहरी चमक होती
हर हरफ भीतर से बोलता है
पानीदार अक्षर ही चलता है फटाफट
फिर चलती है मन की मशीन
मेरे होने का मिलता है सबूत
खट-खटा-खट
मैं ही तो चलता हूं
भीतर से बाहर
बाहर से भीतर
खट-खटा-खट ।

सहमा-सा कबूतर

एक पागल की सनक
बारूद की पोशाक से
धरती सवारी जा रही है
कंकडों की टोह में
एक सहमा-सा कबूतर
घाटियों में गुटंगू करता
अडे मेहता।

वक्त का मिजाज

हर आस्तीन में सांप पल रहा है
वक्त का मिजाज कैसा हो गया है ?

चेहरे पर कई-कई और चेहरे
आदमी को आजकल यह क्या हो गया है ?

आईना अपना बेपानी हो रहा है
शीशे का स्वभाव कैसा हो गया है ?

शब्द की पहचान निरर्थक निसार होती जा रही;
व्याकरण को आजकल यह क्या हो गया है ?

महक थी घाटी में फूल अब वो चुभ रहा है
मौसम का मिजाज कैसा हो गया है ?

एक तलपट फिर कहीं से गलत होता जा रहा है
गणित का व्यवहार कैसा हो गया है ?

रास्ता तय करके चलिये इस बीहड़ जंगलात में।
देखिये आदमी की जात का व्यवहार कैसा हो गया है ?

गुलाब और कविता

बहुत दिनों बाद
एक कविता पुस्तक का
सफा खोला
देखा गुलाब वैसा ही है
मुस्करा रहा है
मुरझाया नहीं
जैसा मैंने रखा था
पढ़ते-गुनते तुम्हारे साथ;
गुजरे दिनों की याद
तरोताजा कर रहा आज
कितनी सुरक्षित है
कविता के साये में
जिन्दगी एक गुलाब की
प्यार की
जिसे महसूसा तुम्हारे साथ कभी।

क्या मैं अब कविता से
दूर होता जा रहा हूं
क्या कविता समय के
साथ नहीं जी रही ?
आप भी बताये फनकार है !
गुलाब किताबों में
मुस्करा रहा है
गमले में
मुरझा रहा है
आखिर क्यों ?

तीन कसमें

जो
चोट लगते ही टूट जाये
ऐसे विश्वास को दर्पण बनाऊंगा नहीं।
जो
एक घूंट में ही बहक जाये
ऐसे रिंद को मयखाना बताऊंगा नहीं।
जो
शब्द की पहचान तक को भूल जाये
ऐसे इंसान को कविता सुनाऊंगा नहीं।

ठंडी आग

मेरे भीतर
एक धधकती आग
ठंडी होती जा रही है
क्या तुम्हें मालूम है ?
आदमी का ठंडा होना
मौत कहलाता है
सुनो !
क्या तुम मुझे मौत के
करीब ले जा रही हो ?

नहीं
मुझे बरफ नहीं
आग चाहिए आग
आग चाहे जैसी भी हो
गरमाये तो रखेगी ही
मुझे और मेरे पड़ोसी को
आड़े वक्त बचायेगी
आग के बिना आदमी नहीं होता।
क्या तुम मुझे
आदमी नहीं रहना देना चाहती
सोचो फिर से सोचो !

याद

सब कुछ छूट जाता है
शेष
केवल याद रहती है;
याद ही तो है
जिसे—
मन के तपोवन में
ऋचाओं-सा रच-रचा
गा-गा सुनता-सुनाता हूं
मुस्कराता हूं यादों के सहारे।

सब कुछ छूट जाता है
शेष
केवल एषणा है
जिसे
कविता के शहर में
अपने साथ रखता घूमता हूं
मौज करता-मुस्कराता हूं—यादों के सहारे।
ये ऋचाएं
ऐषणाएं
धरोहर है
मत मांग लेना
लौटा न पाऊंगा इन्हें
जी रहा जिनके सहारे।
सब कुछ छूट जाता है
शेष केवल याद रहती है।

देश की नस्ल

बच्चे
सब रोगी है
जवान
सब भोगी है
पक्की उम्र के
कुछ अनुभवी बड़ेरे
चेतनता के खरे चितेरे
वीतराग योगी हैं।
रोगी
भोगी
योगी
नस्ल जिस देश की ऐसी होगी
क्या
खाक प्रगति वहां होगी ?

देश की नस्ल

बच्चे
सब रोगी हैं
जवान
सब भोगी हैं
पक्की उम्र के
कुछ अनुभवी बडेरे
चेतनता के खरे चितेरे
वीतराग योगी हैं।
रोगी
भोगी
योगी
नस्ल जिस देश की ऐसी होगी
क्या
खाक प्रगति वहां होगी ?

विद्रूपता

कितना सरल है
कंकड़ चुगते
मछलियां पकड़ते
किसी कश्ती को डूबते देखना
और मल्लाह की आलोचना करना;
नाविक नाव नहीं डुबोया करता
हवा का रुख, पानी का मिजाज—
नाव का भूगोल
और भार की भयावहता
किसी भी खेवनहार को
ले डूबने के लिए पर्याप्त है,
तह में बिना तपे
सतह पर सोए सोए
किसी के डूबने की घोषणा करना
कितना सरल है सुखदायी है।

कितने मरे, कहां रही चूक
विजय के छोर तक पहुंचने में
क्या रही भूल
बिना जाने
किसी नायक की निंदा करना
रणनीति समझाना
कितना सरल सहासदायक है।

खोहदियों में बंद
कवच पर कवच पहने

कविता में
अपने सुस्ताते चूल्हे में
खाली कनस्तर में
फटी हुई गुदडी में
झरती झोंपड़ी में
एक दिन जीवित जी गये
शिशु की वद आंखों की
मिट्टी में;
क्या आपका चूल्हा गर्म है
क्या आपकी मछलियां
सागर के विना जीवित है
क्या आपका पेट सुरक्षित है
वंद आंखों की मिट्टी में
धड़कन है
नही
नही कोई उत्तर नही।

इसलिए
दौड़म-दौड़
भागम-भाग
सुवह से शाम तक
घर से सागर तक
सागर से वाजार तक
वाजार से घर तक
भागम-भाग
दौड़म-दौड़।

विद्रूपता

कितना सरल है
कंकड़ चुगते
मछलियां पकड़ते
किसी कश्ती को डूबते देखना
और मल्लाह की आलोचना करना;
नाविक नाव नहीं डुबोया करता
हवा का रुख, पानी का मिजाज—
नाव का भूगोल
 और भार की भयावहता
किसी भी खेवनहार को
 ले डूबने के लिए पर्याप्त है,
तह में बिना तपे
सतह पर सोए सोए
किसी के डूबने की घोषणा करना
कितना सरल है सुखदायी है।

कितने मरे, कहां रही चूक
विजय के छोर तक पहुंचने में
 क्या रही भूल
बिना जाने
किसी नायक की निंदा करना
रणनीति समझाना
कितना सरल सहासदायक है।

चौहदियों में बंद
कवच पर कवच पहने

किसी गरीबदास की तपेली के
तिलतिलकर तरेड़ने के दर्द का
राग अलापना
तापघरों में बैठकर
ठिठुरती जिन्दगी के लिए
आंसू ढलकाना
कितना सरल है स्फूर्तिदायक है।

विद्रुपताओं में जीना और
वर्जनाओ से रूबरू होना
आज की कविता की अनिवार्य
शर्त है।
इन घाटियों से गुजरे बिना
खुले में कविता पर यूं
वहस करना
कितना सरल है सहज है
जैसे
बिना समझे किसी शख्स को
कटघरे में खड़ा करना
कितना सहज है रोमांचक है।

बात करो

बात करो
बात करो
काम नहीं बात करो।

देश का सवाल है
झंडे की बात करो
गरीब का ख्याल है
डंडे की बात करो। बात करो…।

मुल्क अब आजाद है
नूरिया बरबाद है
नेता आम खास है
खास यह सवाल है
नेता की बात करो
कुर्सी का ख्याल है
घात-प्रतिघात करो। बात करो…

बोलना कसूर है
आजादी नासूर है
गांधी बेकसूर है।
गांधी का सवाल है
गांधी का जाप करो
मुल्क का खयाल है
आंधी की बात करो। बात करो…

हर गली राशन
खाली शासन के आसन है

शासन का सवाल है
शक्ति की वात करो
सत्ता का ख्याल है
जनता की वात करो।

वात करो, वात करो
काम नहीं वात करो
दिल्ली दरवार है
साथ रहो घात करो।
वात करो वात करो॥

अपने

कल तक
बांधते थे जिसका थूथना
पोंछते थे नाक
पिलाते थे छाछ
खिलाते थे उबला पापड़
कंधे पर बिठा
दिखाते थे मेला
दिलाते थे झुंझना
देखते थे अपना
आज और कल,
बीच सड़क वो
नंगा खड़ा है
देखते भी नहीं
तुम कैसे अपने हो ?

शासन का सवाल है
शक्ति की वात करो
सत्ता का ख्याल है
जनता की वात करो ।

वात करो, वात करो
काम नही वात करो
दिल्ली दरवार है
साथ रहो घात करो ।
वात करो वात करो ॥

अपने

कल तक
बांधते थे जिसका थूथना
पोंछते थे नाक
पिलाते थे छाछ
खिलाते थे उबला पापड़
कंधे पर बिठा
दिखाते थे मेला
दिलाते थे झुंझना
देखते थे अपना
        आज और कल,
बीच सड़क वो
नंगा खड़ा है
देखते भी नही
तुम कैसे अपने हो ?

वीच नदी में

तुम्हें छोडते हुए भय लगता है
और वचाना भी सभव नही
मैं
वीच नदी में तुम्हें ले आया हू
पीठ पर लादे-लादे अतीत।
दूर-दूर तक कही भी
कोई नाव, द्वीप, तट वांसवन
नही दिखता
पानी और पानी
सिर्फ पानी का घेराव
सन्नाटा वुनता समय।
ऐसा नही—
कि किनारा कभी मिला ही नही,
अक्सर छिपी हुई काई की
मुलायमियत मे फिसलता गया
और वीच नदी में
आ गया तुम्हारे साथ—
स्मृतियों का भार उठाये।
घाट-घाट का पानी पीने के वाद
वेघाट वीच नदी मे होना सुहाता है।

घात-प्रतिघात से
डूवने का भय नही
अपने वूते ही लड़ना पड़ता है
खूखार मौसम से यहां
लडाई आमने-सामने होती है

बीच नदी में
खुले आकाश बिखरे पानी के बीच
पीछे से नहीं कोई करता वार;
पानीदार लोग ही
पानी में पानी के लिए
खुलकर करते हैं संघर्ष
मैं बीच नदी में
आ गया हूं
तुम्हें छोड़ते हुए भय लगता है
और बचाना भी सम्भव नहीं

रिसना गैस का ··

कैसे रिसने वाली गैस
अचानक रिश्तों में
किसकी अस्वाधानी का
परिणाम है कि—
मैं सूजी हुई आख
और सीने में दर्द लिये
टटोल रहा हू
घर के कोने जिन्हें
जहरीली गैस
सूना कर गई।
मुआवजा मन की
महक तो नही लौटा सकता
आश्वासन
खाली आत्मा को भरा-भरा नही कर सकते,
न ही विक्षप्त हुए
सपने मेरी लाठी बन सकते है अब
क्या ऐसा रिसाव
हुआ है रिश्तों मे कभी ?

इतिहास मौन
कल शर्मिन्दा होगा
नासमझ योजनाओं के लिए
रिस गई है गैस—
जिसके तहत
रिश्तों मे भीतर तक।

भरा-पूरा भावना का भोपाल

भस्मीभूत हो गया
इतिहास तो नहीं लौटेगा
मैं ही एक शिलालेख
हो गया हूं अब
पढ़ सकना भी मुश्किल है
मेरी बची हुई बच्ची के लिए
जो रसाव का—
भविष्य भोगने के लिए
अभिशप्त है।
कैसे रिसने लगी गैस।

समंदर जो सूख गया

एक समदर था
यहीं कहीं आसपास मेरे
हिस्सा हुआ करता था मैं जिसका
सूख गया;
कितनी तीखी रही होगी प्यास !
अब सिर्फ
रेत ही रेत
भुर-भुरी रेत
ज्यों हिये का हेत
पड़ी है
अकेली एक नाव
खेया करता था मैं कभी
साथ-साथ उसके
उमडते-उफनते सागर में
भरी-भरी देह से
अब केवल अहसास है
पास-पास होने का
सन्नाटा है और मैं हूं—
कि सागर है
जो सूख गया।

अहसास

मैं
अब भी महसूस करता हूँ
उसका होना
मांस-मज्जा-हड्डियों में
जैसे
गंध फूलों की चमन में
अहसास नहीं मरा करता
मरती है देह
वह देह ही तो थी—
जो नहीं है आस-पास मेरे
सिर्फ अहसास है
होने का
जैसे
रेत में पानी का
सूनी नाव में
यात्री का
जो नहीं रहा।

यही एक दर्द

एक भरी-भरी
गिलास
रखता था जिसे मैं
कभी टेबल
तो कभी चारपाई के
आस-पास
बिना छुए अधर,
टूट गया।
टूटना तो होता ही है
हर गिलास को
आज को;
फकत
मेरे हाथ में आकर
टूट गया;
यही एक
दर्द सालता रहेगा
मुझे।
अकस्मात्
असमय
टूट गया गिलास
छूट गई प्यास;
पानी को क्या उत्तर दूं
यही एक सवाल
सुलगाता रहेगा मुझे
हरेक मुकाम पे
जो होंगे खास-खास।

परिवार : एक अनुभूति

(1)

आंगन में इमली-सी
झुकी-झुकी
पांवों पर
मेंहदी के चित्र आंकती,
वह लज्जवंती
नव अरुणा-सी कौन ?
बंधु !
पत्नी है।
सीमा है।

(2)

तेज धूप-सी
इखरी-बिखरी
घर के
इस कोने से उस कोने तक
बिजली-सी
दौड़-धूप करती
वह क्रियाशील श्रम-सी कौन ?
बंधु !
भाभी है
महिमा है भैया की।

(3)

मुहाने पर
बैठी सरिता-सी

किलकारित चंचल शिशुओं-से
घिरी-घिरी
वह ममता-सी कौन ?
वंधु !
जननी है
गरिमा है घर की।

(4)

मां के आंचल से परे-परे
अपनी होकर भी
दूर-दूर।
वह सिंहद्वार पर
स्नेह-कलश
ढुलकाती
कल्याणी-सी कौन ?
वधु !
भग्नी है
परिधि है प्राणों की।
तुमको, मुझको,
हम सबको
अपनी
सीमा, महिमा, गरिमा
की
परिधि में
रहना है जीना है।

अनुभूति-सुख

साथी
तेरा लिया दिया
सब कुछ है
न
कोई दुःख है
सब सुख है
सब सुख है।

उषा-सी पत्नी है
रश्मि-सी बेटी है
किरणों की
उंगली पकड़-पकड़
हंसते-खिलते
कुसमों-सा बेटा है
पीपला-सा भैया है
पुरवा-सी भाभी है
रुकते ही जिसके
जीवन की सब साधें
आधी-आधी हैं
उत्तर की तलहटी-सी
हरी-भरी
फूली-फूली भग्नी है
गंगा-सी जननी है
और
पिता भागीरथ से है।

वृन्दावन-सी
इस गृहस्थी में
सब हंसमुख है
सब सुख है।